□□□□□ □□□□□□□ □□□□

जनसत्ता 16 जून, 2014 : बलात्कार और हत्या पर राजनीतकि रोटयिां सेंकने के लएि बदायूं के कटरा सादतगंज गांव में पहुंचने वाले राजनीतकिों को उपेक्षा से नहीं लेना चाहएि□ न इस जमात के दूर से ऊलजलूल अर्द्ध-सत्य बोलने वालों को□ दरअसल, इन सतही कवायदों में स्त्री-सशक्तीकरण के पैरोकारों के लएि □क नहिति संदेश है- स्त्री-वरिुद्ध हसिा के मसलों पर समग्र राजनीतकि □जेंडे की सख्त जरूरत है□ मीडयिा, □नजीओ और कानून के दम पर यह मुहमि □क सीमा से आगे नहीं जा पा रही□ मर्द और औरत के असमान संबंधों को राजनीत के वषिम शक्त-िसंबंधों के समांतर भी रख कर देखना होगा□ ग्रामीण क्षेत्रों में बदायूं जैसे कांडों को जैसे महलिा शौचालयों का अभाव संभव करता है, उससे कहीं ब□ कर दबंगई को शह देने वाला राजनीतकि वातावरण भी□

सीनाजोर यौनहसिा न बदायूं तक सीमति है न उत्तर प्रदेश तक□ न गावों तक और न कसिी पार्टी-वशिेष के शासन तक□ लहिाजा, बजाय इसे महज कानूनी या प्रशासनकि सवालों में बांधे रहने के, इसके राजनीतकि □जेंडे पर भी बात होनी चाहएि- क्या स्त्रयिों के प्रत िसंवेदनशील पुलसि, राष्ट्रीय राजनीत के □जेंडे पर है? क्या महलिाओं के लएि सुरक्षति शौचालय का मुद्दा राजनीतकि दलों की चुनावी प्राथमकिताओं में शामलि है? औपनवििशकि तेवर से चलाई जा रही कानूनी और न्यायकि व्यवस्था के लोकतांत्रकिीकरण को लेकर उनकी राजनीतकि समझ क्या है? वधिायकि में महलिा आरक्षण को राजनीतकि दल कब तक अमली जामा पहना पा□ंगे? स्थानीय नकिायों में आरक्षति सीटों पर चुनी गई महलिाओं का राजनीतकि स्पेस उनके पतयिों ने कैसे हथयिा रखा है? समाज में अराजक यौन-वस्फिोट की चुनौती के सामने यौन-शक्षिा का परदृिश्य नदारद क्यों है?

इस बीच, बदायूं-दरदिंगी के क्रम में घोषति उत्तर प्रदेश सरकार का पांच लाख रुप□ का मुआवजा, शकिार बहनों के लएि 'न्याय' का हसि्सा नहीं बना है□ सरकारों के लएि पी□ति पक्ष को आर्थकि मदद देना आसान होता है, पर न्याय करने में उन्हें समूची राजनीतकि सामाजकिता को शीशे में उतारना प□ता है□ मुआवजा □क सामान्य प्रशासनकि कदम है, जबकि 'न्याय' के दायरे में तो सत्ता-राजनीत की अग्नि-परीक्षा भी होगी□ इसी समीकरण के चलते बदायूं में न प्रदेश सरकार का कोई समाजवादी मंत्री तुरंत पहुंचा और न केंद्र सरकार का कोई भाजपाई मंत्री□ जो अन्य राजनीतकि वहां पहुंचे, उन्होंने भी स्वयं को 'जंगल राज' को कोसने और अपराधयिों को कठोर दंड देने के कानूनी □जेंडे तक सीमति रखा□ स्पष्ट है कि मर्दवादी सामाजकिता की खुराक पर पलने वाले नेताओं की दलिचस्पी स्त्री-सशक्तीकरण के राजनीतकि □जेंडे में नहीं होने जा रही□

बदायूं कांड ने अखलिेश सरकार के अक्षम प्रशासन को ही नहीं, उसकी लंपट राजनीत को भी बेपर्द कयिा है□ इसे तार्ककि परणिति तक ले जाने के लएि जनता को अगले चुनाव का इंतजार रहेगा□ पर पुलसियिा मलिीभगत और न्यायकि नष्क्रयिता के ऐसे मामलों में, मुआवजे के अलावा, कानून-व्यवस्था बेहतर करने के नाम पर प्रशासनकि फेरबदल, नष्पिक्षता के नाम पर सीबीआइ जांच और जवाबदेही के नाम पर दोषयिों, पुलसिकर्मयिों को कठोरतम दंड सुनश्चिति करने के सवाि और क्या कयिा जा सकता है? स्पष्ट है कि पैसे और प्रभाव के दम पर की जाने वाली यौनकि सीनाजोरयिां, आज के मीडयिा युग में, कसिी भी शासन की साख के ग्राफ को राजनीतकि रसातल में पहुंचा सकती हैं□ यह भी स्पष्ट है कि कानून और न्याय की प्रणालयिों का लोकतांत्रकिीकरण और उनमें कार्यरत कर्मयिों की स्त्री-संवेदी उपस्थत िवे अनवािर्य पूर्वशर्तें होंगी जनिसे लैंगकि न्याय की राजनीत में लोकतांत्रकि संतुलन मजबूत होगा□

स्त्री की सुरक्षा का सवाल उतना ही पुराना है जितना उसकी पुरुष-निर्भरता का इतिहास। सुरक्षा के नाम पर उसके लिए नैतिक और धार्मिक 'कवच' कम नहीं हैं; साथ ही पारिवारिक, सामाजिक, कानूनी और प्रशासनिक हथकंडों की भी भरमार है। पर 'निर्भया' या 'बदायूं' जैसी सामूहिक बलात्कार और हत्या की दरिंदगी का विस्फोट समय-समय पर याद दिलाते रहने के लिए पर्याप्त है कि ये हथकंडे यथास्थिति को तोड़ नहीं दे पाए हैं।

दरअसल, इन वैचारिक नृशंसताओं को संभव करने की राजनीति की टक्कर का प्रति-हथकंडा दे सकने वाली राजनीतिक जमीन को तोड़ने का वक्त अभी आना है। इस हद तक, स्त्री-विरुद्ध हिंसा के राजनीतिकरण की हर कवायद को सकारात्मक ही कहा जाएगा।

मसलन, बदायूं कांड अंजाम होने में सहायक परिस्थितियां- पीड़ितों की अंधेरे में खुले में शौच की विवशता या पुलिस की दबंग अपराधियों के पक्ष में घातक निष्क्रियता- राजनीतिक हथकंडे पर आने पर ही बदलेंगी। सबसे पहले हमें स्वीकारोक्ति दर्ज करनी होगी कि स्त्री की सुरक्षा उसे विवश बनाए रख कर नहीं की जा सकती। पुराना चलन रहा है कि स्त्री को कमजोर रखो और उसके परिवार और परिवेश के मर्द उसकी सुरक्षा करें। पर इससे स्त्री सुरक्षित नहीं की जा सकी। दिसंबर 2012 के बर्बर निर्भया प्रसंग के बाद यह जिम्मा 'कठोर' और 'मजबूत' कानूनों के हवाले करने का सिलसिला चल पड़ा है। पर स्त्री ज्यों की त्यों असुरक्षित है, क्योंकि वह अब भी परिवार और समाज की सत्ता-राजनीति का सबसे कमजोर मोहरा है।

यानी मर्दों के अनुशासन में या कानूनों के घेरे में स्त्री खुद को सुरक्षित नहीं पा रही है। दरअसल, आज स्त्री की सुरक्षा की पूर्वशर्त है कि स्त्री खुद सशक्त हो। महज कई कानून बनाने से यह सशक्तीकरण नहीं हो सकता। महज समाज की सतह पर स्त्री की उपस्थिति बढ़ने से उसकी स्थिति मजबूत नहीं हो जाती। यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि लोहे की बेड़ियों को लोहे की धार ही काटेगी। स्त्री-सशक्तीकरण के मुद्दे को राजनीतिक हथकंडे पर लाए बिना स्त्री-सुरक्षा के लिए वांछित वातावरण बनाने की दिशा में और आगे बढ़ पाना संभव नहीं लगता।

इस संदर्भ में दूसरा जरूरी पहलू स्त्री-सुरक्षा के सामंती तौर-तरीकों को नकारने की इच्छाशक्ति दिखाने का है। स्त्री-सुरक्षा को, राखी-व्यवस्था या पर्दा-व्यवस्था या ड्रेस-कोड, चारदीवारी या पहरेदारी, यहां तक कि पुलिस गश्त-नाकेबंदी जैसे उपायों के हवाले करने की व्यर्थता को स्वीकार कर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। याद रखना चाहिए कि इन सामंती तौर-तरीकों से स्त्री सशक्त नहीं हुई है, बल्कि सामंती जीवन-मूल्य सशक्त हुए हैं। स्त्री के सशक्तीकरण के लिए कानून, न्याय और पुनर्वास से सकारात्मक मलिाप की गारंटी, पैतृक संपत्ति में बराबरी, जीवन-साथी चुनने की स्वतंत्रता, शिक्षा, कैरियर और मातृत्व चुनने का अधिकार, पारिवारिक-सामाजिक-आर्थिक निर्णयों में भागीदारी, आदि लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित रास्ते आक्रामक रूप से खोलने होंगे।

इन रास्तों पर राजनीतिक पहल के अभाव को मीडिया या एनजीओ की मुहिम से भरा नहीं जा सका है। न अधिकि दखल और न्यायपालिका की सक्रियता इस शून्य को भर पाई है। इस संदर्भ में सामाजिक चेतना की रुग्णता को देश भर में खाप मानसिकता से की जाने वाली 'इज्जत'-हत्याओं और छेड़-हमलों में देखा जा सकता है। ऐसी हिंसा के लिए बदनाम राज्य हरियाणा की दो खापों ने 'उदारवादी' पहल के नाम पर, अंतर्जातीय विवाहों पर से सदियों पुरानी रोक हटाने का निर्णय लिया है। राजनीतिक, सामाजिक और मीडिया-टिप्पणियों में इसे प्रगतिशील कदमताल करार दिया गया, जबकि खापों ने वास्तव में अपने समाज में प्रचलित कन्या भ्रूण-हत्या और स्त्री-तस्करी पर मोहर लगाने का अपराध किया- क्योंकि व्यापक भ्रूण-हत्याओं से लड़कियों की कमी के चलते इन्हें पत्नियां आर्थिक और जातीय रूप से कमजोर क्षेत्रों/ तबकों से खरीद कर लानी पड़ रही हैं।

तीसरा महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दा बनेगा वर्तमान स्त्री संबंधी कानूनी प्रावधानों और प्रक्रियाओं के स्त्री के दृष्टिकोण से पुनरवलोकन का। अब तक हुआ यह है कि स्त्री-सुरक्षा को लेकर बने तमाम कानूनों ने राज्य को सशक्त किया है, न कि स्त्री को। अपराधियों की सजाएं बढ़ाने या कानून-न्याय तंत्र के

कोसने से न पीड़ित को धक्के खाने से राहत मिलती है और न आगे के लिए स्त्री-विरुद्ध अपराधों पर रोक लगने में मदद। बस असंवेदी राज्य-तंत्र की शक्तियों में वृद्धि जरूर हो जाती है।

जबकि स्त्री के नजरिए से बने कानूनों की कसौटी ही यह होगी कि पीड़ित को घर बैठे सहायता और तय समय-सीमा में राहत उपलब्ध हो; उसे न्याय और पुनर्वास समयबद्ध मिले। यही नहीं, कानून-व्यवस्था और न्याय-व्यवस्था से जुड़े किसी भी अधिकारी या कर्मचारी के लिए स्त्री-संवेदी प्रामाणित होना भी अनिवार्य होगा।

समाज में स्त्री की पारंपरिक देवी-सती-रंडी-डाइन जैसी रूढ़-अतिरंजित छवियों को तोड़ना, उसके सशक्तीकरण की राह का चौथा चरण होगा। स्त्री की परजीवी, पराश्रयी, उपभोग्या, कुटनी जैसी छवि को मजबूत करने वाले तमाम सामाजिक-सांस्कृतिक रूपों का तिरस्कार करना होगा। लोकप्रिय मीडिया माध्यमों जैसे अखबारों, पत्रिकाओं, टीवी, सिनेमा, इंटरनेट आदि पर पुरुषवादी नजरिए से स्त्री के अपमानजनक या गैर-बराबरी के चित्रण को नए सिरे से अपराध घोषित करना होगा। सास, बहू के साथ 'साजिश' को अनिवार्यत: नत्थी करने वाले सजा के पात्र होंगे। बलात्कार को 'लड़के हैं गलती हो जाती है' कह कर टालने वाले और छप्पन इंच के सीने से 'मर्दानगी' को महिमामंडित करने वाले राजनेता चुनाव से बहिष्कृत किए जाएंगे। सुरक्षा/ पुलिस बलों के मर्दाने मानक कूड़ेदान में होंगे।

अंत में जरूरी है कि स्त्री के विरुद्ध नियमित रूप से होने वाली हिंसा को उसके केवल एक रूप- यौनिक हिंसा- के चश्मे से देखने का रिवाज बंद किया जाए। जो समाज बसों, कार्यस्थलों और निर्जन स्थानों में बलात्कार और छेड़छाड़ को लेकर इतना उद्वेलित हो उठता है, वह घर-घर में स्त्री के रोजमर्रा के उत्पीड़न और कार्यस्थलों पर स्त्रियों के साथ होने वाले भेदभाव पर चुप्पी साधे रहता है। स्त्री के जन्म से शुरू होकर भेदभाव और हिंसा का खेल कमोबेश उसके जीवन भर चलता ही रहता है। दरअसल, यौनिक हिंसा की जड़ें लैंगिक असमानता की जमीन से ही खुराक पाती हैं। परिवार से लेकर समाज तक सिखाई यही है कि हावी पुरुष अपनी मनमानी को तरह-तरह से स्त्री की कीमत पर व्यक्त कर सकता है। 'मर्यादा' और 'इज्जत' के नाम पर स्त्री चुपचाप सहे या फिर निर्भया, बदायूं, खाप, एसिड भुगते।

क्या भारतीय स्त्री की दुनिया ऐसे ही चलने दी जाएगी? वंचना और हिंसा, अपमान और अन्याय के दंश से उसका जीवन मुक्त होगा? क्या सामाजिक-आर्थिक वंचनाएं, भ्रूण हत्याएं, एसिड हमले या खाप की सजाएं किसी सामूहिक बलात्कार से कम दरिंदगी के प्रसंग हैं? क्या हर मर्द को मर्दवादी स्वेच्छाचारी बना कर उसका परिवार ही उसे संभावित यौन-अपराधी के रूप में तैयार नहीं करता है? क्या स्त्री को एक संवेदी कानूनी और प्रशासनिक परिवेश मिलेगा? राजनीति के बदले बिना स्त्री का पारिवारिक, सामाजिक और कार्यस्थल का वातावरण बदलेगा?

इसी विमर्श से स्त्री का राजनीतिक एजेंडा निकलता है। इसे लागू करने के लिए ग्राम पंचायतों और स्थानीय निकायों से लेकर विधानमंडलों तक में स्त्रियों का आरक्षण भी, मनोवैज्ञानिक कवायद ही सिद्ध होगा। स्त्रियों के सशक्तीकरण की राजनीति गांव-गांव, गली-गली, घर-घर पहुंचनी चाहिए।

फेसबुक पेज को लाइक करने के लि क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लि क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta